ऋग्वेदोक्तं देवीसूक्तम्

ॐ अहमित्यष्टर्चस्य सूक्तस्य वागाम्भृणी ऋषिः, सच्चित्सुखात्मकः सर्वगतः परमात्मा देवता, द्वितीयाया ऋचो जगती, शिष्टानां त्रिष्टुप् छन्दः, देवीमाहात्म्यपाठे विनियोगः।[1]

ध्यानम्

ॐ सिंहस्था शशिशेखरा मरकतप्रख्यैश्चतुर्भिर्भुजैः
शङ्खं चक्रधनुःशरांश्च दधती नेत्रैस्त्रिभिः शोभिता।
आमुक्ताङ्गदहारकङ्कणरणत्काञ्चीरणन्नूपुरा
दुर्गा दुर्गतिहारिणी भवतु नो रत्नोल्लसत्कुण्डला॥[2]

देवीसूक्तम्[3]

ॐ अहं रुद्रेभिर्वसुभिश्चराम्यहमादित्यैरुत विश्वदेवैः।
अहं मित्रावरुणोभा बिभर्म्यहमिन्द्राग्नी अहमश्विनोभा॥ १॥

जो सिंहकी पीठपर विराजमान हैं, जिनके मस्तकपर चन्द्रमाका मुकुट है, जो मरकतमणिके समान कान्तिवाली अपनी चार भुजाओंमें शंख, चक्र, धनुष और बाण धारण करती हैं, तीन नेत्रोंसे सुशोभित होती हैं, जिनके भिन्न-भिन्न अंग बाँधे हुए बाजूबंद, हार, कंकण, खनखनाती हुई करधनी और रुनझुन करते हुए नूपुरोंसे विभूषित हैं तथा जिनके कानोंमें रत्नजटित कुण्डल झिलमिलाते रहते हैं, वे भगवती दुर्गा हमारी दुर्गति दूर करनेवाली हों।

[महर्षि अम्भृणकी कन्याका नाम वाक् था। वह बड़ी ब्रह्मज्ञानिनी थी। उसने देवीके साथ अभिन्नता प्राप्त कर ली थी। उसीके ये उद्‌गार हैं—] मैं सच्चिदानन्दमयी सर्वात्मा देवी रुद्र, वसु, आदित्य तथा विश्वेदेवगणोंके रूपमें विचरती हूँ। मैं ही मित्र और वरुण दोनोंको, इन्द्र और अग्निको तथा दोनों अश्विनीकुमारोंको धारण करती हूँ॥ १॥

---

१. इससे विनियोग करके निम्नांकित रूपका ध्यान करे ।

२. ध्यानके पश्चात् नीचे लिखे अनुसार वेदोक्त देवीसूक्तका पाठ करे ।

३. ये देवीसूक्तके आठ मन्त्र ऋग्वेदके अन्तर्गत मं० १० अ० १० सू० १२५ की आठ ऋचाएँ हैं।

अहं सोममाहनसं बिभर्म्यहं त्वष्टारमुत पूषणं भगम्।
अहं दधामि द्रविणं हविष्मते सुप्राव्ये यजमानाय सुन्वते॥ २॥
अहं राष्ट्री संगमनी वसूनां चिकितुषी प्रथमा यज्ञियानाम्।
तां मा देवा व्यदधुः पुरुत्रा भूरिस्थात्रां भूर्य्यावेशयन्तीम्॥ ३॥
मया सो अन्नमत्ति यो विपश्यति यः
प्राणिति य ईं शृणोत्युक्तम्।
अमन्तवो मां त उप क्षियन्ति श्रुधि
श्रुत श्रद्धिवं ते वदामि॥ ४॥
अहमेव स्वयमिदं वदामि जुष्टं
देवेभिरुत मानुषेभिः।

मैं ही शत्रुओंके नाशक आकाशचारी देवता सोमको, त्वष्टा प्रजापतिको तथा पूषा और भगको भी धारण करती हूँ। जो हविष्यसे सम्पन्न हो देवताओंको उत्तम हविष्यकी प्राप्ति कराता है तथा उन्हें सोमरसके द्वारा तृप्त करता है, उस यजमानके लिये मैं ही उत्तम यज्ञका फल और धन प्रदान करती हूँ॥ २॥ मैं सम्पूर्ण जगत्की अधीश्वरी, अपने उपासकोंको धनकी प्राप्ति करानेवाली, साक्षात्कार करनेयोग्य परब्रह्मको अपनेसे अभिन्न रूपमें जाननेवाली तथा पूजनीय देवताओंमें प्रधान हूँ। मैं प्रपंचरूपसे अनेक भावोंमें स्थित हूँ। सम्पूर्ण भूतोंमें मेरा प्रवेश है। अनेक स्थानोंमें रहनेवाले देवता जहाँ-कहीं जो कुछ भी करते हैं, वह सब मेरे लिये करते हैं॥ ३॥ जो अन्न खाता है, वह मेरी शक्तिसे ही खाता है [क्योंकि मैं ही भोक्तृ—शक्ति हूँ]; इसी प्रकार जो देखता है, जो साँस लेता है तथा जो कही हुई बात सुनता है, वह मेरी ही सहायतासे उक्त सब कर्म करनेमें समर्थ होता है। जो मुझे इस रूपमें नहीं जानते, वे न जाननेके कारण ही दीन-दशाको प्राप्त होते जाते हैं। हे बहुश्रुत! मैं तुम्हें श्रद्धासे प्राप्त होनेवाले ब्रह्मतत्त्वका उपदेश करती हूँ, सुनो— ॥ ४॥ मैं स्वयं ही देवताओं और मनुष्योंद्वारा सेवित इस दुर्लभ तत्त्वका वर्णन करती हूँ। मैं जिस-जिस पुरुषकी रक्षा करना चाहती हूँ, उस-

यं कामये तं तमुग्रं कृणोमि
तं ब्रह्माणं तमृषिं तं सुमेधाम्॥ ५ ॥
अहं रुद्राय धनुरा तनोमि ब्रह्मद्विषे शरवे हन्तवा उ।
अहं जनाय समदं कृणोम्यहं द्यावापृथिवी आ विवेश॥ ६ ॥
अहं सुवे पितरमस्य मूर्धन्मम
योनिरप्स्वन्तः समुद्रे।
ततो वि तिष्ठे भुवनानु विश्वो-
तामूं द्यां वर्ष्मणोप स्पृशामि॥ ७ ॥
अहमेव वात इव प्रवाम्यारभमाणा भुवनानि विश्वा।
परो दिवा पर एना पृथिव्यैतावती महिना संबभूव॥ ८॥*

उसको सबकी अपेक्षा अधिक शक्तिशाली बना देती हूँ। उसीको सृष्टिकर्ता ब्रह्मा, परोक्षज्ञानसम्पन्न ऋषि तथा उत्तम मेधाशक्तिसे युक्त बनाती हूँ॥ ५॥ मैं ही ब्रह्मद्वेषी हिंसक असुरोंका वध करनेके लिये रुद्रके धनुषको चढ़ाती हूँ। मैं ही शरणागतजनोंकी रक्षाके लिये शत्रुओंसे युद्ध करती हूँ तथा अन्तर्यामीरूपसे पृथ्वी और आकाशके भीतर व्याप्त रहती हूँ॥ ६॥ मैं ही इस जगत्के पितारूप आकाशको सर्वाधिष्ठानस्वरूप परमात्माके ऊपर उत्पन्न करती हूँ। समुद्र (सम्पूर्ण भूतोंके उत्पत्तिस्थान परमात्मा)-में तथा जल (बुद्धिकी व्यापक वृत्तियों)-में मेरे कारण (कारणस्वरूप चैतन्य ब्रह्म)-की स्थिति है; अतएव मैं समस्त भुवनमें व्याप्त रहती हूँ तथा उस स्वर्गलोकका भी अपने शरीरसे स्पर्श करती हूँ॥ ७॥ मैं कारणरूपसे जब समस्त विश्वकी रचना आरम्भ करती हूँ, तब दूसरोंकी प्रेरणाके बिना स्वयं ही वायुकी भाँति चलती हूँ, स्वेच्छासे ही कर्ममें प्रवृत्त होती हूँ। मैं पृथ्वी और आकाश दोनोंसे परे हूँ। अपनी महिमासे ही मैं ऐसी हुई हूँ॥ ८॥

---

* इसके बाद तन्त्रोक्त देवीसूक्त दिया गया है, उसका भी पाठ करना चाहिये।